संपादकीय

सत्यांश

हिन्दी की हाय

भौतिक संसाधनों-सुविधाओं से भरापूरा सांसारिक जीवन भी अपनी तुच्छताओं-क्षुद्रताओं की एकलयता के कारण दीर्घकालिक आनंद-आत्मतोष नहीं उपलब्ध करा पाता; इसलिए आशा-उमंग का संचार करने के लिए पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं, जो साल में कुछएक गिने-चुने दिन ही संपन्न होते हैं। प्रतिदिन उत्सव-त्योहार का आयोजन संभव नहीं, अतः ऐसा प्रचलन भी नहीं है और दूसरा, यदि रोज-रोज आयोजित हों, तो उत्सव उत्सव नहीं रह पाएँगे; जैसे रोज आने वाले मेहमान मेहमान नहीं कहे जा सकते। व्रतोत्सव, पर्व-त्योहार लौकिक संस्कृति और धार्मिक अध्यात्म से ही प्रायः जुड़े होते हैं। इनसे बिल्कुल विलग बेसुध नशे की खुमारी और निपट जड़ता की मदमस्ती कई-कई दिन और वह भी कभी-कभी लगातार चलती है, जैसा कि बच्चन जी ने 'मधुशाला' में कहा भी है -

एक बरस में एक बार ही जगती होली की ज्वाला,
एक बार ही लगती बाजी, जलती दीपों की माला,
दुनिया वाले, किंतु किसी दिन आ मदिरालय में देखो,
दिन को होली, रात दीवाली, रोज मनाती मधुशाला।

बहरहाल, हिन्दी का प्रयुक्ति-क्षेत्र यही भौतिक संसार और उसमें भी भारतव ष ही अधिक है, अतः हिन्दी के प्रति भी यदा-कदा ही आकर्षण का उत्साह दिखाई देता है, फलतः जोश भरने के लिए सितंबर महीने में हिन्दी पखवाड़ा और 14 सितंबर को हिन्दी दिवस मनाया जाता है। यह कोई लोक पर्व नहीं है, न ही लोक आस्था-विश्वास से जुड़ा कोई त्योहार है, बल्कि यह सरकारी उत्सव है। विश्व हिन्दी सम्मेलन सहभागियों के लिए किसी आनंदोत्सव से कम नहीं होते। ये प्रतिवर्ष आयोजित नहीं होते - यह तो सर्वविदित है, पर कितने वर्षो के अंतराल पर संपन्न होंगे - यह निश्चित नहीं है। हिन्दी के उत्सव जनसामान्य से दूर रहकर सरकार के औपचारिक रस्म के तौर पर होते हैं, अतः इन्हें लेकर आमजनों में कोई जोश-उत्साह नहीं पनपता, जैसा कि परंपरागत पर्व-त्योहारों, मेला-उत्सवों में दिखता है। वह भी तब, जब हिन्दी का व्यापक विस्तार है और वाणिज्यिक-व्यापारिक बाजार क्षेत्र भी बढ़ा है।

हिन्दी संवैधानिक रूप में भारत की राष्ट्रभाषा है, अतः इसके उत्सवों का आयोजन सरकार द्वारा सीधे किए जाने पर कोई दिक्कत नहीं होती। धार्मिक पर्व-त्योहारों व अनुष्ठानों से सरकार परहेज करती है, क्योंकि भारत 'धर्मनिरपेक्ष' है, यानी 'सर्वधर्म समभाव' पर चलता है। धार्मिक आयोजनों के लिए सरकार सुविधा-सुरक्षा जरूर मुहै या कराती है। भारतीय भाषाओं के प्रति भी सरकार को 'सर्वभाषा समभाव' के सिद्धांतों का अनुपालन करना पड़ता है, लेकिन अंग्रेजी इससे परे है। इसका प्रभुत्व तब से है, जब हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाएँ अखिल भारतीय स्तर पर अपने प्रति समभाव रखने की आकांक्षा व्यक्त करने की स्थिति में नहीं थीं। अब जब इस स्थिति में हैं तो अंग्रेजी की निकटतम प्रतिद्वन्द्वी हिन्दी को प्रशासनिक-न्यायिक सहित सारे कार्य-व्यवहारों में व्यवहृत न होने देने के लिए जागरूक हैं, जिस कारण अंग्रेजी का आधिपत्य मजबूत हुआ है। यह भी कहा जाता है कि बहुत सारे प्रशासनिक, न्यायिक, वाणिज्यिक, वैज्ञानिक, तकनीकी कार्य व अध्ययन-अनुसंधान हिन्दी में हो ही नहीं सकते, जबकि सच्चाई यह है कि हिन्दी में काम करने के लिए कभी दृढ़ संकल्प के साथ ईमानदार प्रयत्न हुए ही नहीं। यदि हिन्दी इतनी ही अक्षम है तो राष्ट्रभाषा-राजभाषा कैसे-क्यों बन गई? निस्संदेह, हिन्दी में कार्य करने के लिए श्रमसाध्य तैयारी की आवश्यकता है। भाषा, व्याकरण, वर्तनी व लिपि से संबंधित हिन्दी में आंतरिक समस्या बहुत अधिक है जो कार्य की नवीनता में बाधक होगी। हिन्दी भाषा के व्याकरण, लिपि आदि पर जो कार्य सौ साल पहले हुए, उसी पर हिन्दी का 90 प्रतिशत वर्तमान ढाँचा स्थिर है। यह सही है कि तब हिन्दी विकसित हो रही थी, जो अब खड़ी है; लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हिन्दी भाषा के व्याकरण व लिपि के स्तर पर कार्य की जरूरत नहीं है। नए परिवेश में अनगिनत नई समस्याएँ अनेक बार लिखने-बोलने

के क्रम में सामने आती हैं, जिनका निराकरण पहले से नहीं है और कुछ जगह जो समाधान प्रस्तुत है, वह गले नहीं उतरता। यह सब खलता-सताता है और कौतूहल उत्पन्न करता है। इस अनिवार्य, पर श्रमसाध्य कार्य को करने की ओर मन आगे बढ़-बढ़कर कदम पीछे कर लेता है।

विश्वविद्यालयों-अकादमियों आदि में हो रहे अध्ययन-अनुसंधान भाषा, व्याकरण, वर्तनी, लिपि को लेकर नहीं हो रहे हैं, बल्कि साहित्य के घिसे-पिटे या नए विषयों पर बिल्कुल रूढ़िग्रस्त तरीके से हो रहे हैं, जिसमें कुछ भी संधान नहीं होता। पाठ्यक्रमों में भी विकासशील भाषिक-व्याकरणिक संरचना तथा वर्तनी-लिपि की समस्या को पूर्णतः नजरअंदाज किया गया है। जहाँ देवनागरी लिपि-वर्तनी की समस्या व उसका समाधान पढ़ाया जाता है, वहाँ भी चिरपरिचित दो दर्जन समस्या-समाधान सामने होते हैं, जबकि समस्याएँ सैकड़ों हैं और उतने ही समाधान भी होंगे। वस्तुतः हिन्दीजीवी संस्थान हिन्दी के वास्तविक संस्कारों-सरोकारों से अलग जाकर इस भाषा की जड़ कमजोर करने में संलग्न हैं। इस बार का विश्व हिन्दी सम्मेलन घोषित रूप से हिन्दी भाषा पर केन्द्रित है, लेकिन यह हिन्दी भाषा को सक्षम-समृद्ध बनाने में कितना कारगर सिद्ध होगा - यह देखना जरूरी है। इन सबके बावजूद, यह मानना मुश्किल है कि आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के युग में सब काम हिन्दी में नहीं हो सकते। परंपरागत रूप में ही देखें तो प्रशासनिक कार्यालयों, न्यायालयों, विश्वविद्यालयों, अकादमियों में ऐसे कौन-से गंभीर व रहस्यमय कार्य हो रहे हैं जो हिन्दी में नहीं हो सकते। नया व मौलिक स्वयं कुछ न करना पड़े, इसीलिए हिन्दी में कार्य न हो पाने का हौवा जानबूझकर-सोचसमझकर खड़ा किया गया है। इन कार्य-क्षेत्रों को जनसामान्य से दूर रखने के लिए सहज-सुबोध हिन्दी की बजाय अंग्रेजी को बनाए रखा गया है। कुछ जगह जाने-अनजाने ऐसी हिन्दी का नमूना पेश किया जाता है जो अंग्रेजी की नहीं, हिन्दी की दुरूहता दर्शाते हैं। यह एक चाल है। वास्तविकता यह है कि कोई भी काम हिन्दी में करना न तो कठिन है और न असाध्य।

जो भी हो, हिन्दी आज भी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राष्ट्रीय स्तर पर न केवल धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रही है, बल्कि फल-फूल रही है लोक-संस्कारों और आम आदमी के अंग्रेजी कम या न जानने की लाचारी के कारण, अन्यथा हिन्दी की बोलचाल ऊटपटांग अंग्रेजी से कम सभ्य-सुशिक्षित मानी जाती है। अंग्रेजी अभिजात्य, पढ़े-लिखे, होशियार-कामगार होने की स्थिति का सूचक है और हिन्दी तमाम योग्यताओं के बावजूद पिछड़ेपन का। फिर भी हिन्दी राज्य, प्रशासन, न्यायालय, कारपोरेट जगत से दूर लोक व्यवहार का अभिन्न अंग है तो सिर्फ आम जनता और कुछ जिद्दी किस्म के व्यक्तियों-संस्थाओं के कारण।

हिन्दी को राष्ट्रसंघ की भाषा बनाने के लिए सरकार द्वारा उच्च स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। इस मांग को पूरा करने की जिम्मेवारी भारत सरकार से अधिक दूसरे देशों पर टिकी है, ठीक वैसे ही जैसे मुख्यमंत्री नीतीश कुमार द्वारा बिहार को विशेष राज्य का दर्जा दिए जाने की मांग भारत सरकार से है। अपने स्तर पर हिन्दी के लिए भारत सरकार और बिहार के लिए नीतीश कुमार को जो कुछ करना चाहिए, क्या वे कर चुके हैं? राष्ट्रसंघ की भाषा बनने से भारत में हिन्दी की आंतरिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आ जाएगा और बिहार को विशेष राज्य का दर्जा देने से वह वास्तव में 'विशेष राज्य' बन पाएगा - यह जरूरी नहीं है। यह सब संभव है भारत यरकार व बिहार सरकार की निष्ठा, कार्यकुशलता और ईमानदारी से, तभी राष्ट्रसंघ की भाषा और विशेष का दर्जा मिलने से हिन्दी और बिहार का भला होगा। दूसरों से आकांक्षा व्यक्त करना अपने दायित्वों से मुँह छिपाना तथा दूसरों का ध्यान हटाना भी होता है।

हिन्दी के उत्सव सरकार भरोसे हैं, जबकि हिन्दी रामभरोसे-जनभरोसे। यह हर दिन का आत्मिक आनंदोत्सव बन जाए, तो एक-दो दिन का उत्सव फीका पड़ जाएगा; पर कुछएक दिन का उत्सव फीका पड़ना गलत है या फिर पूरा भाषिक जीवन उत्सव बन जाए - यह जरूरी है? दिवसों-सम्मेलनों में हिन्दी के कॉस्मेटिक रूप पर मुलम्मा चढ़ाया जाता है, जिसकी चमक-दमक में इसकी हूक-हाय मंद पड़ जाती है, दिनकर जी के शब्दों में -

'विद्युत की चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है,
अरी, हृदय को थाम महल के लिए झोपड़ी बलि होती है।'